अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४७ अंक : २ माघ–फाल्गुन वि.सं.– २०७७ फरवरी, २०२१ पृष्ठ –२८ RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X

किसानों के सत्याग्रह शिविर में

किताबें

हसन खां मेवाती पुस्तकालय

शाहजहांपुर–खेड़ा में किसान सत्याग्रह पर बैठे हैं। तंबूओं में रहते हैं। वहीं सोना–बिछोना, खाना–पीना और सभी हारी–बिमारी में भी परमानंद के साथ जीवन बसर कर रहे हैं। किसी के चेहरे पर कोई शिकन नहीं है। साथ ही समय बिताने को पुस्तकें भी उनको सुलभ हैं। यह खबर संदीप वहां रहते हुए लेकर आये हैं। जनवादी लेखक संघ ने वहां पर हसन खां मेवाती पुस्तकालय खोल दिया है। किसान भाई आते हैं, किताब मांग कर ले जाते हैं, अपने तंबू में बैठकर पढ़ते हैं। दूसरे दिन लौटा भी जाते हैं। हसन खां मेवाती इस इलाके में बहुत प्रसिद्ध हैं। जैसे छोटा–नागपुर में बिरसा मुंडा प्रसिद्ध हैं ऐसे ही हसन खां मेवाती जाने जाते हैं। कहते हैं पानीपत की लड़ाई में हसन खां मेवाती राणा सांगा के साथ थे। उनकी बहादुरी के किस्से आज भी इस इलाके में गाये–बजाये जाते हैं। ❑

समिति में गणतंत्र दिवस

समिति में 26 जनवरी गणतंत्र दिवस पर झंडारोहण किया गया। इस अवसर पर बापू के दिये जंतर की तस्वीर सभी कार्यकर्ताओं में वितरित की गयी। उद्देश्य था घर–घर पहुंचे बापू का संदेश। ❑

सुलगते सवाल !

इतनी हरियाली के बावज़ूद
अर्जुन को नहीं मालूम
उसके गालों की हड्डी क्यों
उभर आई है?
उसके बाल
सफ़ेद क्यों हो गये हैं?
लोहे की छोटी–सी दुकान में,
बैठा हुआ आदमी, सोना
और इतने बड़े खेत में खड़ा आदमी
मिट्टी क्यों हो गया है?

– धूमिल

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ४७ अंक : २ माघ-फाल्गुन वि.सं. २०७७ फरवरी, २०२१

क्र म

०३ **वाणी**
सुलगते सवाल!
धूमिल

०७ **चिंतन**
अवसाद में फंसता बचपन

१२ **आलेख**
स्कूलों के बिना सीखना

१७ **यात्रा-वृत्तांत**
यास्नाया, पोल्याना
टॉलस्टॉय की तपोभूमि

२३ **लेख**
द ओपन क्लास रूम

०५ **अपनी बात**
लोकतंत्र बनाम
निजीकरण

९ **आलेख**
अक्षर 'ढ'

१४ **कविताएं**
मुकुन्द लाठ

२१ **संवाद**
मिशन ताना-बना
सामाजिक एकता सत्संग

२६ **पिछला पन्ना**
उनींदे बच्चे और
मोबाइल पर क्लास

अपील

समिति के सभी सदस्यों, दूर-दराज के मित्रों एवं भारत के विभिन्न राज्यों में फैले सुधी पाठकों से निवेदन है कि समिति के प्रकाशन की निरंतरता बनाये रखने के लिए अपनी सहयोग राशि पूरी उदारता के साथ भिजवाने का अनुग्रह करें। आज किसी भी पत्रिका का प्रकाशन बहुत मुश्किल काम है मगर समिति अपने पूर्ण सेवा भाव के साथ अनौपचारिका को पिछले 47 वर्षों से निरंतर निकाल रही है। सभी प्रबुद्ध पाठक जानते हैं कि अभी हाल ही में कादम्बिनी भी बंद हो गई है जो हिन्दुस्तान टाइम्स का प्रकाशन था। ऐसी स्थिति में हम कटिबद्ध हैं कि अनौपचारिका निरंतर निकलती रहे। आपका सहयोग सादर अपेक्षित है।

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक :
रमेश थानवी
कार्यकारी संपादक :
प्रेम गुप्ता
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-३०२००४
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

सद्भावना सहयोग :
व्यक्तिगत ३५०/- रुपये
संस्थागत वार्षिक :
शुल्क ५००/- रुपये
मैत्री समुदाय ३०००/- रुपये
आवरण : **मुकुन्द लाठ**
पृथिवी-सूक्त पुस्तक से साभार

लोकतंत्र बनाम निजीकरण !

मित्रो चारों ओर सर्वजन हिताय की जगह निजी हितों पर जोर है। निजी स्वार्थ ने किसी भी क्षेत्र को अछूता नहीं छोड़ा है। चाहे वह शिक्षा हो, कृषि हो या उद्योग या फिर अर्थव्यवस्था । सब के सब बाजार के हत्थे चढ़ गए हैं। सभी का निजीकरण किया जा रहा है। इन सबका नतीजा तो सीधा समझ में आता है कि आय का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा पूंजीपतियों, व्यापारियों और उद्योगपतियों की जेब में जा रहा है।

आज हालात ऐसे हो गए हैं कि अन्नदाता कहे जाने वाले किसान ही अपने अधिकारों की मांग के लिए महीनों से सड़क पर आ खड़े हुए हैं। उनके लिए आज किलाबंदी कर दी गई है। दीवारें खड़ी कर दी गई हैं। शर्म से सिर झुक जाता है। अन्नदाता कहे जाने वालों से ही हम इतने भयभीत हो रहे हैं!

सवाल रोजी-रोटी कमाने का है। खून पसीना बहाने वालों को उनकी मेहनत का पूरा हक़ देने का है। न्यूनतम समर्थन मूल्यों के लिए भी किसानों को राम भरोसे छोड़ दिया गया है। इनकी मेहनत को बड़े-बड़े पूंजीपतियों, उद्योगपतियों के हवाले कर दिया गया है। नतीजा हमारे सामने है कि इन्हें अब कालाबाजारी, मुनाफाखोरी का भी सामना करना पड़ेगा। पूंजीपति अपने स्वार्थों के लिए सांठगांठ करने में लगे हुए हैं। आज सभी नेता बड़ी हमदर्दी जताने लगे हैं लेकिन किसानों के साथ कोई नहीं हैं।

आज जिस तरह से गांधी जी के प्रिय कहे जाने वाले गरीब, ग्रामीण मजदूर भाइयों के सामने विश्वास की दीवार तोड़ दी गई है। उनका भरोसा तोड़ने की पूरी कोशिश जारी है और उनके सामने एक अविश्वास की दीवार खड़ी कर दी गई है।

देश की आत्मा कहे जाने वाले किसान मजदूरों को आत्महत्या करने को मजबूर करके क्या हम अपने को आजाद देश का आजाद नागरिक कहेंगे! देश गांधी के जंतर को पूरी तरह भूल गया है। बापू ने तो उन करोड़ों भूखे और नंगे लोगों को स्वराज्य दिलाने की बात कही थी।

लोहे की दीवारें जो किसानों के सामने खड़ी की गई हैं वे तो दीखती हैं मगर इससे भी बड़ी जो स्वार्थ की दीवार खड़ी है उसको क्या कहेंगे ?

अभी तक तो हमें लगता था कि यह लड़ाई केवल हक़ की लड़ाई है मगर किसानों की अनदेखी से अब यह लड़ाई सियासत की लड़ाई हो गयी है। किसानों के प्रति नफ़रत की लड़ाई। यह क्या हुआ? ग्रामीण और गरीब किसानों से हम इतने डर क्यूं गये? गांधीजी ने कहा था कि जो राजा अपनी प्रजा से डरता है उसे चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए। (याद करें बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में दिया गया व्याख्यान।) किसान जो पूरे देश की रोजी-रोटी के लिए अपना खून पसीना बहाते हैं उनकी ऐसी उपेक्षा भला किस देश को शोभा देगी। इसी देश के प्रधानमंत्री ने जय जवान जय किसान का नारा दिया था और अभी कल की ही तो बात है कि किसानों की तरक्की के लिए स्वयं प्रधानमंत्री मोदी जी ने दूरदर्शन पर **किसान चैनल** का शुभारंभ किया था। वह क्या सिर्फ सपना दिखाने की बात थी। लेकिन आज क्या हो गया है ?

आज हम लोगों के मासूम दिलों को भी खरीदने चले हैं।

दीवारें तो सीमेंट की दीवार से भी ज्यादा पक्की हो गई हैं। खाइयां भी खुद गयी हैं। सीमेंट की दीवार को तो हथोड़ों से तोड़ा जा सकता है लेकिन दिलों में जो दीवारें बन गई हैं, उन्हें तोड़ने में तो बरस लग जाएंगे । यह युगों युगों तक उनका तोड़ना संभव भी होगा कि नहीं। यही सवाल मन में खड़ा है।

सवाल यह भी है कि इस पूरे परिदृश्य को देखकर शिक्षा का परिदृश्य क्या होगा?

कक्षा में क्या पढ़ाया जायेगा ? क्या हम शालाओं की दीवारों पर फिर यह नारा लिखेंगे **– जय जवान, जय किसान**। बच्चे तब क्या कहेंगे ? वही बच्चे जो आज सर्दी में ठिठुरते हुए भी सत्याग्रह पर बैठे हैं, अपनी दादी और नानी के साथ। उन बच्चों की शिक्षा का क्या होगा? ठंडे पानी की बौछारों और पुलिस की लाठियों के बीच बैठे रहने वाले बच्चे कल क्या कहेंगे? यह सब किसके उत्तर का विषय है? आजाद मुल्क को, लोकतांत्रिक मुल्क को इनका उत्तर देना चाहिए और शिक्षा को, खेती-किसानी को, हमारे कुटीर-उद्योगों को, हमारे स्वावलम्बी आरोग्य तंत्र को और हमारे जनोपयोगी उद्योगीकरण को निजीकरण से हम कैसे बचा ले जायेंगे ? हमें नहीं मालूम!

निजीकरण की बात आज लोक की अपनी निजता को बेच कर की जा रही है। मंडियों के बंद होने का खतरा तो सामने खड़ा ही है, मगर कल मंडियों में इंसानियत बिकेगी इसका भी खतरा सबसे बड़ा है। भारत आज पूरी दुनिया को सबक सिखा सकता है। इंसानियत की रक्षा का सबक। लोक की अस्मिता और निजता की सुरक्षा का सबक। ❑ **–प्रेम गुप्ता**

अवसाद में फंसता बचपन

शीला शर्मा

❑

आज माता–पिता की महत्वाकांक्षा के कारण अधिसंख्य बच्चे अवसाद के शिकार हो रहे हैं। वे अपने आपको खपा रहे हैं। अपनी खुद की जिज्ञासाओं के खिलाफ स्कूली शिक्षा का जहर पी रहे हैं।
उनकी निजता का ह्रास हो रहा है। उनकी जन्मजात अस्मिता खतरे में है। कैसे हम बालकों को बचायें और कैसे बचपन को पूरी दुनिया में सुरक्षित रखें। समझ में नहीं आ रहा है। यही लेखिका के चिंतन का विषय है। ❑ सं.

सुबह अख़बार खोला तो एक ख़बर ने जैसे नज़रों को उलझा लिया....ख़बर थी 'दस वर्ष से लेकर सत्तर वर्ष तक के सात लोगों ने शहर के विभिन्न इलाकों में आत्महत्या कर ली।' ...दिल जैसे बैठ गया। कोरोना महामारी के बीच मुझे आत्महत्या भी एक महामारी की तरह प्रतीत होने लगी। दस वर्ष के बच्चे ने क्या देखा है दुनिया में कि उसे अपने आपको खत्म करने की कोशिश करनी पड़ी। हमने ऐसा क्या रच दिया कि बच्चे खेल और मस्ती भूलते जा रहे हैं और हत्या या आत्महत्या जैसे घृणित कार्यों को अंजाम दे रहे हैं।

दरअसल, आज हर व्यक्ति बस भाग रहा है। उसके पास अपने या अपनों के लिए समय नहीं है। लोगों के पास पैसे हैं, वे अपने बच्चों को अच्छे स्कूल में दाखिला दिलवा रहे हैं, पढ़ने में कमज़ोर हैं तो चार– पाँच ट्यूशन लगवा रहे हैं, इतने पर भी बच्चा उनकी इच्छा के अनुरूप परीक्षा फल नहीं ला रहा है तो उसकी तुलना दूसरों से कर उसे अहसास करवाते हैं कि इतनी सुविधाएं देने के बाद भी वह इच्छित रिज़ल्ट क्यों नहीं लाया? हम बच्चों के साथ व्यापार करने लगते हैं... हमने इतने पैसे खर्च किए तो तुम्हें अच्छा रिज़ल्ट देना है। तुम प्रथम आओगे/ आओगी तो यह दूँगा या दूँगी।... ये कैसी शर्तें होती हैं? हम उन्हें कैसे मूल्य दे रहे हैं? हम बच्चों के साथ व्यापारी नहीं बन सकते। यह रवैया उन्हें उलझाने लगता है। इससे वे हीनग्रंथि के शिकार हो जाते हैं जो आगे चलकर अवसाद को जन्म देता है। यह अवसाद इतना बढ़ जाता है कि अपने आपको खत्म करना ही सबसे आसान लगता है। आज तो कक्षा पाँच के बच्चे से लेकर तथाकथित सेलिब्रिटी तक आत्महत्या कर रहे हैं। कोई भी छोटी से छोटी समस्या हो सबसे सरल उपाय– 'आत्महत्या'!

जब मैं छोटी थी तो मुझे शायद 'डिप्रेशन' शब्द का अर्थ भी पता नहीं था या यूँ कहूँ कि मैंने या मेरे साथ के दूसरे बच्चों ने यह शब्द इतना सुना ही नहीं था। शैतानी करने पर बड़ों से जमकर डांट पड़ती थी जिसे हम बड़ी सहजता से अपना प्राप्य समझकर ले लेते थे। परीक्षा में कम अंक आए, कोई बात नहीं.... उसे हमें छुपाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। ऐसा शायद इसलिए भी हुआ हो कि उस समय माता– पिता अपनी आकांक्षाएं बच्चों पर थोपते नहीं थे और न ही वे बच्चों को हर क्षेत्र में प्रवीण देखना

चाहते थे। हां, हर स्थिति में खुश रहना सिखाते थे, थोड़े में गुजारा करना सिखाते थे।

अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने 'परामर्श सेवा' (counseling) शब्द भी नहीं सुना था। जब मैं शिक्षिका के रूप में एक विद्यालय में गई, तब वहां मेरा सामना 'काउंसलर' शब्द से पड़ा। मैं जिस कक्षा में जाती, वहां कोई न कोई छात्रा काउंसलर के पास जाने को तैयार दिखती। तब मैं वहां बच्चों तथा उनकी तकलीफों को समझने की कोशिश करने लगी। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि जो बात बड़ी आसानी से माता-पिता तथा अभिभावक हल कर सकते थे, वही बातें इतनी जटिल प्रक्रिया में एक काउंसलर को करनी पड़ रही थीं।

सवाल ये है कि बच्चे आखिर बच्चे होते हैं–अबोध, कम उम्र, कच्ची बुद्धि... उन पर इतना बोझ नहीं लादा जा सकता। हम कहीं न कहीं अपनी इच्छाओं को उनके माध्यम से पूरा करने का प्रयास करते हैं। अधिकतर माता-पिता अपने बच्चों को बड़े-बड़े पदों पर देखना चाहते हैं या फिर किसी को नृत्य करना अच्छा लगता था, नहीं कर पाए तो सोच लिया कि उनकी बेटी या बेटा करेगा। किसी को गाना अच्छा लगता था, परिस्थितियों ने सीखने नहीं दिया तो उनका बेटा या बेटी करेगी। हम भूल जाते हैं कि बच्चों की भी इच्छाएं हैं, जिन्हें वे भी पूरा करना चाहेंगे।

कई बार बच्चे माता-पिता से तरह-तरह के सवाल करते हैं जिनका संतोषजनक उत्तर उन्हें नहीं मिलता या उन्हें बचकाने प्रश्न करने पर डांट दिया जाता है। ऐसा करना उचित नहीं है। शायद कभी बच्चों के प्रश्नों को प्रश्नों की तरह देखा ही नहीं गया..... हर घटना पर माता-पिता डरते हैं और अपने बच्चों को वो सब देते हैं जिनकी मांग पूरी न होने पर ये घटनाएं घट रही थीं.... लेकिन क्यों? क्यों नहीं माता-पिता बच्चे को जूझना सिखाते हैं? क्यों नहीं कमी का अहसास कराते हैं? क्यों नहीं थोड़े में जीना सिखाते हैं? क्यों नहीं कुछ क्षण तकनीकी से दूर प्रकृति के बीच रहना सिखाते हैं? क्यों अपनी जीत का ही उत्सव मनाना सिखाते हैं? क्यों नहीं अपनी हार को हार (माला) की तरह पहनना सिखाते हैं?

क्या बात है कि जिस दुनिया में हम खुशी-खुशी खेल-कूदकर बड़े हो गए, आज उसी दुनिया में बल्कि यूँ कहूं कि पहले से अधिक उन्नत दुनिया में हमारे बच्चे रह नहीं पा रहे हैं? क्यों उनका दम घुटने लगा है और वे अपने को खत्म करना ही सभी समस्याओं का हल मान लेते हैं? कहां कमी रह गई? क्या यह सोचने का वक्त नहीं है?

मुझे लगता है हम सभी (माता-पिता, अभिभावक, शिक्षक, शिक्षिकाओं) को अपने बच्चों से खुलकर बात करनी चाहिए, उन्हें वो जगह (space) ज़रूर देनी चाहिए कि जब वो हारें तो वहां आकर थोड़ा सुस्ता लें और फिर आगे बढ़ें। तकनीकी वस्तुएँ जहाँ एक ओर हमारे जीवन को सहज-सरल बनाती हैं, वहीं व्यक्ति को अकेला भी करती हैं। इस अकेलेपन से आने वाली पीढ़ी को बचाना है, उन्हें खुद से तथा औरों से प्यार करना सिखाना है। यदि हमारी शिक्षा सही है तो हमारे बच्चे अवसादग्रस्त कभी नहीं होंगे और न ही आत्महंता बनेंगे। ❑

११, किशन लाल वर्मन रोड,
फ्लैट ४ सी, सलकिया बाँधाघाट,
हावड़ा- ७१११०६
पश्चिम बंगाल

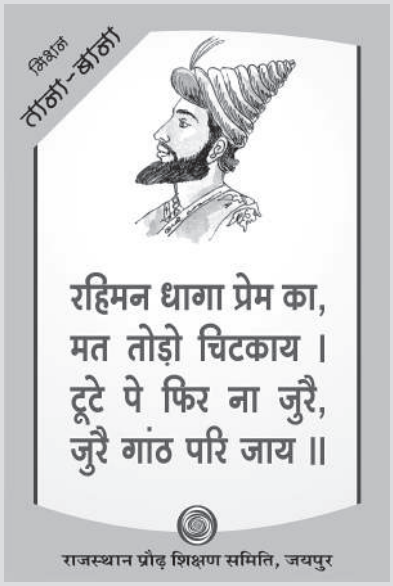

पंकज त्रिवेदी

❑

हर बालक अपने में अनूठा होता है। लेकिन बड़ी विडम्बना यह है कि माता-पिता अपनी महत्वाकांक्षाओं के कारण अपनी इच्छा उन पर थोपते हैं। और उनकी तुलना भी दूसरे होशियार बच्चों से करने लगते हैं। नतीजा यह होता है कि बालक अपने को हीन समझने लगता है। पिछले दिनों इसी विषय पर गुजराती में एक फिल्म भी बनी। कारण यही था कि जो बच्चा पढ़ाई में पिछड़ जाता है उसको सिर्फ 'ढ' ही कहा जाता है। जो फेल हो जाता है वो और भी बड़ा 'ढ' है। भाषा की दृष्टि से संप्रेषित यह होता है कि फलां बच्चे के दिमाग का ढक्कन खुला ही नहीं है और वह 'ढ' का 'ढ' रह गया है। यह लोक भाषा का एक मुहावरा है जो हमारे वर्तमान शिक्षा तंत्र के बारे में बहुत कुछ कह जाता है। पंकज त्रिवेदी उसी की विवेचना करते हैं। ❑ सं.

अक्षर

बच्चों पर कई बार हम अपनी अपेक्षा के अनुसार उसे भविष्य में क्या बनाना है यह सोचते हैं। कोई सोचेंगे कि डॉक्टर बनाएं या इंजीनियर या और कुछ। जब हमारी अपेक्षा पर बच्चे खरे नहीं उतरते तो हम निराश हो जाते हैं। मैंने ऐसे भी माता-पिता देखे हैं कि दो बच्चों की क्षमता को जो समान दृष्टि से देखते हैं। असल में ऐसा होता नहीं है। सभी बच्चे अलग होते हैं अपने स्वभाव से, अपनी पढ़ाई में और अपने व्यवहार में भी।

बड़ी बेटी गाथा सरकारी स्कूल में टीचर है। ६ से ८वीं कक्षा में पढ़ाती है। सुबह में समय नहीं मिलता मगर डिनर के समय हम पूरा परिवार साथ होते हैं। दिनभर की बातें होती हैं। आज गाथा ने ख़ुशी से कहा; पापा, आज मैंने बच्चों को एक गुजराती फिल्म 'ढ' दिखाई।

'ढ' उस छात्र को कहा जाता है जो पढ़ने में कमजोर हो। इस फिल्म में ऐसे बच्चों की कहानी है जो पढ़ाई में कमजोर होते हुए दूसरी प्रवृत्ति में बहुत ही सकारात्मक और आगे रहते हैं। फिल्म की कहानी नहीं कहूंगा मगर गाथा के उत्साह से मेरे जीवन की एक घटना याद आई तो मैंने उसे बताया... अब आपको भी बताऊँ।

मैं जब स्कूल में पढ़ता था तब की बात है। उस वक्त ये तय होता था कि हमें कौन सी फैकल्टी में जाना है। जैसे कोई आर्ट्स, कॉमर्स या साइंस में जाना चाहें तो चुन सकता था। तब सिमेस्टर एक्जाम नहीं थे मगर त्रैमासिक, मासिक, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक परीक्षाएं होती थीं।

मैं अर्द्धवार्षिक परीक्षा में अपनी क्लास में गणित में फेल होने वाला इकलौता छात्र था। उस वक्त गणित-कॉमर्स के जो अध्यापक थे उनका नाम तो नहीं पता मगर सरनेम केरालिया था। उस वक्त पूरे शहर में

फिल्म का एक दृश्य

उनके जैसे गणित-कॉमर्स के कोई टीचर नहीं थे। उनका बड़ा नाम था। तेज़-तर्रार थे। उन्होंने मुझे बुलाकर बड़े प्यार से कहा; पूरी क्लास में तुम एक ही छात्र हो जो गणित में फेल हुए हो। क्या तुम्हें गणित समझ में नहीं आता? कोई दिक्कत हो तो मेरे पास आकर कहना चाहिए न?

उनके स्नेह से मेरे मन में उनके प्रति बहुत ही सम्मान के भाव पैदा हुए थे। मैंने उन्हें बताया था कि मुझे गणित में कुछ समझ नहीं आता। अंक पढ़ते हुए चक्कर से आ जाते हैं।

उन्होंने मुझे आर्ट्स फैकल्टी में जाने की सलाह दी थी।

बहुत वर्षों के बाद केरालिया सर निवृत्त होकर किसी शैक्षिक संस्थान के ट्रस्टी बन गए। उनके जीवन में मेरे जैसे अनगिनत छात्र आए होंगे। हम दोनों एक-दूसरे को भूल गए थे।

एक बार ऐसा हुआ कि उनके संस्थान के किसी अन्य ट्रस्टी ने मुझे निमंत्रण दिया कि आप साहित्यकार हैं तो मैं चाहता हूं कि आप हमारे संस्थान में पधारें और बच्चों से बातचीत करें। अपने अनुभवों को साझा करें। बच्चों को प्रोत्साहन मिलेगा। वो ट्रस्टी खुद मुझे अपनी कार लेकर लेने आए। हम जब संस्थान में पहुंचे तो ऑफिस में अच्छी आवभगत से स्वागत हुआ। फिर हम कार्यक्रम के लिए उस हॉल में पहुंचे, जहां सारे छात्र हमारा इंतजार कर रहे थे। उनकी रस्म के अनुसार मुझे दुशाला और गुलदस्ता देकर स्वागत किया गया। उद्घोषक ने मेरा परिचय दिया। उसी वक्त एक सज्जन हॉल में प्रवेश करके मेरी बगल वाली कुर्सी पर बैठ गए। मैंने उन्हें गौर से देखा तो पहचान गया। हां, वो केरालिया सर ही थे। उद्घोषक ने उनका परिचय देते हुए कहा कि वह भी इस संस्थान के ट्रस्टी हैं। मैं समझ गया। पहचान होने के बावजूद मैंने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

जब मेरे उद्बोधन का समय आया तो मैंने कहा कि प्रत्येक छात्र में अपनी-अपनी खासियत और खूबियां होती हैं। शिक्षक यदि उसकी क्षमता, रस-रुचि को पहचान लें तो वे अपने छात्र को जीवन में आगे बढ़ने के लिए सही मार्गदर्शन दे सकते हैं।

केरालिया सर असमंजस से मुझे सुन रहे थे। उनके चेहरे के भावों

୮

उड़िया

൮

मलयाली

૮

गुजराती

ঢ

बांग्ला

ढ

देवनागरी

ਢ

गुरुमुखी

को मैं समझ गया कि शायद वे सोचते होंगे कि इस साहित्यकार को मैं व्यक्तिगत जानता हूं मगर वे चुपचाप सुनते रहे।

मैंने आगे कहा; मैं स्कूल में था तो अपनी क्लास में गणित में फेल होने वाला मैं इकलौता छात्र था। उस वक्त मैं फेल नहीं हुआ था, मेरे टीचर यानी केरालिया सर फेल हुए थे क्योंकि उनका कोई सानी नहीं था। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाकर अकेले में बड़े प्यार से पूछा था कि तुम्हें क्या तकलीफ़ है? उन्होंने मुझसे चर्चा के बाद सुझाव दिया था कि तुम आर्ट्स फैकल्टी पसंद करो। सफलता मिलेगी। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा था कि मैं हमेशा तेरे साथ हूं।

मेरी बात सुनकर पहले उन्हें आश्चर्य हुआ और बाद में सुनते-सुनते अत्यंत भावुक हो गए और आंखों में नमी उभर आई थी। वो दृश्य आज भी मुझे याद है। मेरा वक्तव्य पूर्ण करने के बाद मैं उनके पास गया और चरणस्पर्श कर रहा था कि वे मुझे गले से लगाते हुए बोले; सच है, तुम गणित में फेल नहीं हुए थे, मैं ही फेल हुआ था। उनका यह स्नेह मेरे लिए सबसे बड़ा आशीर्वाद सिद्ध हुआ है। अगर उनके सुझाव के अनुसार मैं आर्ट्स में नहीं जाता तो शायद मेरी दिशा और दशा दोनों अलग होती।

जीवन की विडंबनाओं से लड़ते हुए मैंने होटल, ग़ैराज और कारखानों में भी काम किया है। मगर बचपन से साहित्य लिखता रहा। आज भी केरालिया सर कहीं भी मिल जाते हैं तो उनका स्नेह दूर से ही आंखों से छलकता है। एक सच्चा शिक्षक अपने छात्र की खूबियां और खामियां समझ लेता है तो उस छात्र की ज़िंदगी बदल जाती है।

आज पहली बार मैंने अपनी दोनों बेटियों को यह बात बताई तो उन दोनों के चेहरे पर चमक आ गई। गाथा, तुम ऐसी ही टीचर बनना। अपनी अपेक्षाओं को छात्रों पर थोपना नहीं। उन्हें खिलने और खुलने का अवसर ज़रूर देना।

उस वक्त मैं गणित में 'ढ' विद्यार्थी था मगर आज साहित्य का विद्यार्थी हूं। ❑

गोकुल पार्क सोसायटी
८० फुट रोड
सुरेन्द्रनगर-३६३००१, गुजरात
मो. ८८४६०१२२०१

जात-पांत पूछे नहीं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई।।

स्कूलों के बिना सीखना

❑

आलोक मिश्रा
❑

आज स्कूली शिक्षा ने बचपन को अपने शिकंजे में ले लिया है। पूरा करने से लेकर होमवर्क करने तक की अनिवार्यता के कारण बच्चे अपने बचपन का आनंद ही नहीं ले पाते। बढ़ते दबाव के कारण 'सीखने' के अवसर तो लगभग समाप्त हो रहे हैं। प्रतिस्पर्धा के कारण घर के काम में सहयोग देने और प्रकृति के साथ मेलजोल भी नहीं हो पा रहा है।
प्रस्तुत आलेख में बाल-वत्सल आलोक मिश्रा की चिन्ता है कि बहुत से बालक आज समाज और समुदाय से कटकर अकेले रह जाते हैं। स्कूल से बाहर की दुनिया से भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है । ❑ सं.

कोरोना महामारी ने मानव जीवन को बहुत प्रभावित किया। इसने हमारी रोजमर्रा की बहुत-सी क्रियाकलापों पर भी एक तरह का ब्रेक-सा लगा दिया। हालांकि अब समाज और बाजार की बहुत सी गतिविधियां शुरू हो चुकी हैं। स्कूलों में भी धीरे-धीरे रौनक लौटने लगी है।

कोरोनाकाल में मध्य मार्च के बाद से दिसंबर तक स्कूल बंद रहने की वजह से बच्चे एक तरह से घरों में कैद होकर रह गये थे। ऐसे समय में अभिभावकों, शिक्षकों सहित समाज के एक बड़े हिस्से में इस बात को लेकर चिंता बनी रही कि स्कूलों से दूर बच्चों को कैसे सिखाया जाये? ऑनलाइन क्लास एक विकल्प बनकर उभरी, पर उसकी अपनी सीमाएं हैं।

यहां ठहरकर यह सोचा जाना चाहिये कि क्या बच्चे सिर्फ़ स्कूल में रहकर सीखते हैं? क्या घर पर रहकर अपने परिवार, पड़ोस और साथियों के बीच बच्चे ऐसा कुछ नहीं सीखते जो जीवन में मूल्यवान हो? दरअसल हमारा आधुनिक समाज शिक्षा को औपचारिक स्कूलिंग से जोड़कर देखने का आदी हो चुका है। वह इस तथ्य को भी झुठला देना चाहता है कि बच्चे अधिकतर कौशल और जीवन मूल्य स्कूल की अनुशासित कक्षा से बाहर अनौपचारिक सामाजिक दायरे में ही सीखते हैं।

दुनिया भर में शिक्षाविदों और बौद्धिकों का एक समूह तो संस्थानीकृत स्कूलिंग के दुष्प्रभावों को जोरदार ढंग से रेखांकित करने लगा है। ईवान इलीच जैसे विचारक ने तो 'डिस्कूलिंग सोसाइटी' यानी समाज को स्कूलों से मुक्त करने की बात तक की है। वे स्कूलों को बच्चे की नैसर्गिक क्षमताओं को कुंद करने वाली और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी, अनुशासित व आज्ञापालक नागरिक बनाने वाली फैक्टरी मानते हैं। अमेरिकी शिक्षक विद्वान जॉन टेलर गेट्टो अपनी किताब 'डम्बिंग अस डाउन' में कहते हैं कि अमेरिकी स्कूल अपने विद्यार्थियों को सात पाठ पढ़ाते हैं। वे हैं- भ्रमित रहना, वर्ग स्थिति बनाये रखना, तटस्थ और उदासीन बनना,

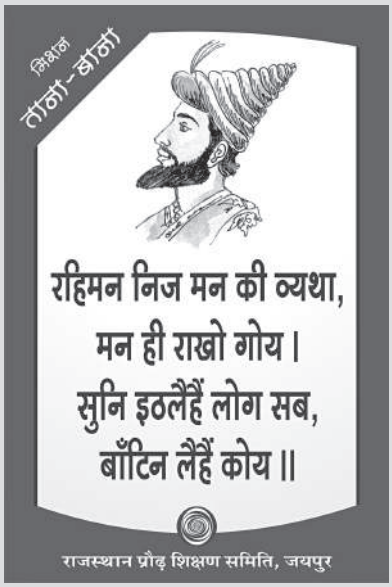

भावनात्मक और बौद्धिक रूप से निर्भर बनना, संपूर्ण आत्मसम्मान के बजाय कामचलाऊ आत्मसम्मान की भावना पैदा करना और निगरानी में रहने को स्वाभाविक मान लेना। जबकि अरस्तू जैसे विद्वानों का मानना था कि सामुदायिक जीवन में पूर्ण सक्रिय भागीदारी और भूमिका निभाए बिना कोई परिपूर्ण मानव बनने की आशा नहीं कर सकता।

स्कूलों की इस तरह की आलोचना को हम भले ही पूरी तरह से स्वीकार न करें, किंतु इतना तो मानेंगे ही कि आज स्कूलों ने बच्चों के पूरे बचपन को गंभीर रूप से अपने घेरे में ले लिया है। स्कूली समय के बाद भी बच्चों को होमवर्क और ट्यूशन जैसी अनिवार्य-सी बन चुकी गतिविधियों में खपना होता है। खेलने-कूदने, गप्प मारने, प्रकृति को निहारने और उच्च व मध्यवर्गीय परिवारों में घरेलू कामों में बड़ों के साथ संलग्न होते हुए सीखने के अवसर लगभग शून्य हो गए हैं। मुझे अपने बचपन के दिन याद हैं जब हम बच्चों को स्कूल जाने के अलावा भैंस चराने, घास काटने, पोखरे और नदी में नहाने, खेलने-कूदने, खेत के सामूहिक कामों में भागीदारी करने, प्रकृति के नजदीक रहने के ढेरों अवसर मिलते थे। वे हमारे लिए साथियों से मिलने, खोज करने, खेलने और कल्पना करने के अवसर भी थे। स्कूलों में भी आज की जैसी प्रतिस्पर्धा की जगह समूह में मिल-जुलकर सीखने, मूल्यों को प्रदर्शित करने और अल्प निगरानी व नियंत्रण करने की प्रवृत्ति थी। पर आज इसकी घोर कमी महसूस होती है। आखिर क्यों आज बहुत से पढ़े-लिखे और सफल लोग अपने समाज और समुदाय से कटकर रहना पसंद करते हैं?

आज पूरी दुनिया में होम स्कूलिंग (घर पर शिक्षा) और अनस्कूलिंग (स्कूल में प्रवेश नहीं लेना) आंदोलन अपनी जगह बना रहा है। अकेले अमेरिका में दस लाख से अधिक अभिभावकों ने बच्चों को घर पर शिक्षा देने का विकल्प चुन लिया है। हमारे देश में भी बहुत सीमित ही सही, पर कुछ अभिभावक इसे अपना रहे हैं। न चाहते हुए भी कोरोना ने हमें एक तरह की स्कूल विहीन अवस्था में तो पहुंचा ही दिया है। भले ही ऐसा समय अल्पकालिक हो।

लॉकडाउन के दौरान घर पर रहते हुए मैं अपने तीन बच्चों के साथ बहुत अच्छी तरह जुड़ पाया और उनके सीखने के तौर-तरीकों का अवलोकन भी कर सका। दस, सात और तीन साल के तीनों बच्चे दिनभर तरह-तरह की गतिविधियों में लगे रहते। इसमें स्कूल की किताबें पढ़ने के अलावा घर के फालतू सामान को खिलौने में ढाल लेना, उन्हें कई तरीके से प्रयोग करना, चित्रकारी, नृत्य और नये-नये कौशल सीखना शामिल रहा। पांचवीं और तीसरी कक्षा में पढ़ने वाली बेटियों ने

शेष पृष्ठ..१६ पर

पृथिवी–सूक्त

अनुवाद और रेखांकन

मुकुन्द लाठ

मुकुन्दजी के देहावसान के बाद उनकी एक बहुत नायाब किताब पृथिवी–सूक्त का प्रकाशन हो गया है। पृथिवी–सूक्त अथर्व वेद का एक अंश है और उसमें से ही मुकुन्दजी ने ३७ मंत्रों का चयन किया है। प्रत्येक मंत्र का काव्यानुवाद एवं रेखांकन मुकुन्दजी ने किया है। इसी पुस्तक में से चुन कर उन मंत्रों का काव्यानुवाद मंत्रों सहित हम यहां प्रकाशित कर रहे हैं। यह अनौपचारिका के पाठकों की सेवा में एक अमूल्य भेंट है। ❑ सं.

एक

बढ़ती हुई,
चढ़ती हुई,
समतल फैली
पृथिवी।

मानव के लिए निर्बाध है
इसका मध्य

कैसा वीर्य है
इसके पौधों में।

हमारे लिए
वर्धमान हो,
सिद्ध हो
पृथिवी।। ❑

असंबाधं मध्यतो मानवाना
यस्यां उद्वत: प्रवत:समं बहु।
नाना वीर्या ओषधीर्या
बिभर्ति पृथिवी न: प्रथतां राध्यतां न:।।2।।

दो

जल है यहां
नदियां हैं
समुद्र हैं।

कृषि और अन्न का
जन्म है यहां।
यहां जीते हैं जीव
सांस लेते हैं,
विचरते हैं।

पृथिवी,
हमें हमारा पहला
पेय दो। ❑

यस्यां समुद्र उतसिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टय: संबभूवु:।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि: पूर्वपेये दधातु।।3।।

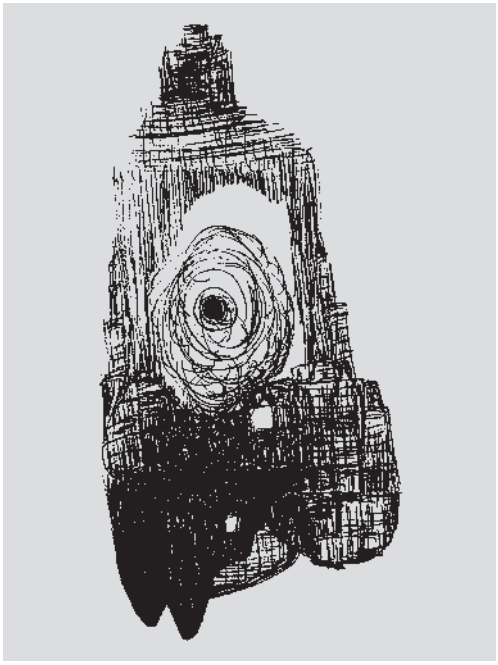

तीन

तुम्हारा मध्य,
तुम्हारी नाभि,

हे पृथिवी,
उत्स है ऊर्जा का।

वहीं हमें गोद दो,
पावन करो।

पृथिवी माता है,
मैं पुत्र हूं पृथिवी का।
पर्जन्य पिता हैं हमारे
हमारा भरण करें। ❑

यत् ते मध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्व: संबभूवु:।
तासु नो धेह्याभि न: पवस्य माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या:।।
पर्जन्य: पिता स उ न: पिपर्तु।।12।।

पृष्ठ १३ से आगे ...

अनुभव की हुई बात पर कविता और डायरी लिखनी शुरू की। लॉकडाउन के दौरान साइकिल से अपने पिता को लेकर गुड़गांव से बिहार गई किशोरी ज्योति पर ऑनलाइन क्लास में पत्र लिखने का काम मिला तो छोटी बेटी ने साइकिल चलाना सीखने की ठान ली। मैंने महसूस किया कि जब तीन दिन तक मैं उसे सीखने में मदद करता रहा, वह नहीं सीख पा रही थी। मेरी दो दिन की व्यस्तता में उसने साइकिल चलानी खुद ही सीख ली। अब वह घर के सामने गली में साइकिल पर उड़ती है। स्वयं करके सीखने का कोई विकल्प नहीं, यह उसी का उदाहरण था। वहीं, बड़ी बेटी ने यूट्यूब पर देखकर बहुत से क्राफ्ट बनाने की कोशिश की और अब कुछ चीजें हाथ से तैयार करते हुए वह अपना वीडियो बनाकर साझा करती है।

मेरे तीन साल के बेटे ने अपनी बहनों, दादाजी और मेरे साथ घर में रहते हुए अपने भाषा-ज्ञान को बहुत बढ़ा लिया। इसके लिए महज आपसी अंतःक्रिया ही काफी रही। ये बदलाव बताते हैं कि स्कूल से बाहर की दुनिया में भी सीखना अबाध रूप से चलता रहता है। सोचिए, अगर स्कूल से अवकाश के इन महीनों में अगर बच्चों को मोहल्ले, समुदाय और समाज से घुलने-मिलने का अवसर भी मिलता और बीमारी के भय से मुक्त वातावरण होता तो और कैसा परिणाम मिल सकता था। ❑

मकान नं.-२५०, ग्राउंड फ्लोर,
पॉकेट-९, सेक्टर-२१,
रोहिणी, दिल्ली-११००८६

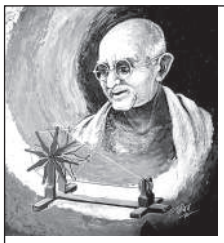

बापू की बात

केवल पुस्तकीय शिक्षा नहीं

विद्यार्थी विवेक सीखें

विद्यार्थियों को यह विवेक करना आना चाहिये कि क्या चीज ग्रहण की जाय और क्या न की जाय। शिक्षक का धर्म है कि अपने विद्यार्थियों को विवेक सिखलाये। अगर हम विवेक के बिना जो सिखाया जाय वही लेते चले जायें, तो हमारी हालत मशीनों से बेहतर नहीं होगी। हम विचार करने वाले, ज्ञान रखने वाले प्राणी हैं और इस काल में हमें सत्य और असत्य का, मधुर और कटु भाषण का, शुद्ध और अशुद्ध वस्तुओं का और इसी प्रकार दूसरी चीजों का फर्क मालूम होना चाहिये। परन्तु आजकल विद्यार्थियों के रास्ते में भलाई-बुराई का विवेक करने की अपेक्षा और भी अधिक कठिनाइयां बिखरी हुई हैं। ऋषि-मुनि अपने शिष्यों को पुस्तकों के बिना पढ़ाते थे। वे उन्हें थोड़े से मंत्र दे देते थे, जिन्हें विद्यार्थी अपनी स्मृति में संचित कर लेते थे और व्यावहारिक जीवन में उन पर अमल करते थे। आजकल के विद्यार्थियों को किताबों के ऐसे ढेर में गड़ा रहना पड़ता है, जो उनका दम घोटने को काफी है। ❑

यास्नाया, पोल्याना टॉलस्टॉय की तपोभूमि

विभांशु कल्ला
❑

विभांशु कल्ला एक कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता हैं। ये समाज सेवा के कार्य से जुड़े हैं। रूस में प्रवास के दौरान वहां के एक गांव भी गये, जिसका नाम है यास्नाया पोल्याना, जहां टॉलस्टॉय का जन्म भी हुआ था। उन्हें शांति के दूत के संदर्भ में याद किया जाता है। टॉलस्टॉय महात्मा गांधी के प्रणेता भी थे। प्रस्तुत आलेख में विभांशु कल्ला अपने अनुभवों को साझा करते हुए कह रहे हैं कि बड़ा आश्चर्य होता है यह जानकर कि आज इसकी पहचान मोबाइल पर खेले जाने वाले एक गेम में साइट के रूप में कराई जाती है जबकि टालस्टॉय ने किसानों और मजदूरों के बच्चों के लिए वहीं एक स्कूल खोला था। ❑ सं.

यह लॉकडाउन के दिन थे, बड़े शहरों में लॉकडाउन घरों की दीवारों तक सिमटा रहा होगा लेकिन छोटे क़स्बों में इसकी सीमा गली–मोहल्ले थे। रोज़ शाम को गलियों के भीतर बैठकें लगती थीं। ऐसे ही एक दिन हम बैठे थे और रूस में मेरे अनुभवों के बारे में बात चल रही थी। तभी एक तरुण हो रहे लड़के ने पूछा कि क्या आप यास्नाया पोल्याना गए हो?

मुझे बड़ी आश्चर्य मिश्रित ख़ुशी हुई कि मेरे छोटे भाई ने किसी महानगर या प्रचलित टूरिस्ट शहर के बजाय रूस में तुला शहर के पास स्थित उस छोटे से गांव के बारे में पूछा है जिसकी पहचान लेफ टॉलस्टॉय (लेव टॉलस्टॉय) से जुड़ी है। मुझे लगा शायद यह टॉलस्टॉय को ज़रूर पढ़ रहा होगा।

मैंने उसे बताया कि मैं दो बार यास्नाया पोल्याना गया हूँ लेकिन तुम्हें इसके बारे में जानकारी कैसे मिली। उसका उत्तर सुनकर मेरी खुशी लम्बे क्षोभ का कारण बन गई। उसने बताया कि मोबाइल में खेले जाने वाले एक डिजिटल वॉर गेम PUBG (Player Unknown's Battlegrounds) में यास्नाया पोल्याना एक वॉर साइट है, जहां पर युद्ध लड़ा जाता है। मेरे दिल में यह विचार कौंध गया कि क्यों चुनने वाले ने वॉर साइट के रूप में उस जगह को चुना जिसकी अब तक की पहचान शांति का संदेश देने वाले टॉलस्टॉय से जुड़ी है?

रूस में अपने दो साल के प्रवास के दौरान मैं दो बार यास्नाया पोल्याना गया। भले ही हमारी तत्कालीन सरकार और उसके अनुयायी गांधी से पीछा छुड़वाने की कोशिश करें लेकिन कहने भर के

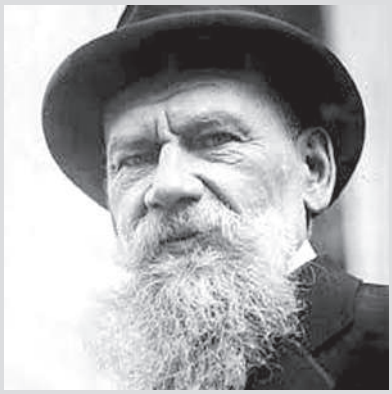

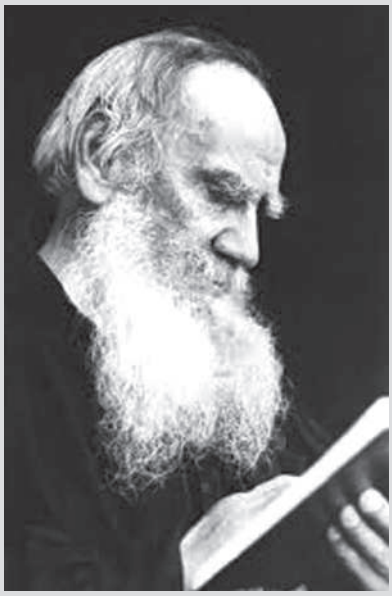

लिए ही उन्हें गांधी का सहारा लेना पड़ता है। तो यह गांधी की १५०वीं वर्षगांठ वाला वर्ष था। इसी उपलक्ष्य में रूस स्थित भारत के दूतावास ने एक कार्यक्रम टॉलस्टॉय-गांधी की साझा विरासत को याद करने के लिए तय किया था और स्थान था यास्नाया पोल्याना। सितंबर, २०१९ के आख़िरी रविवार को कार्यक्रम तय किया गया। भारत की तरफ से मुख्य अतिथि पर्यावरण मंत्री प्रकाश जावेडकर थे। कुछ भाषण और खान-पान के बाद हम टॉलस्टॉय की जागीर में थे। यह ४००० एकड़ में फैला एक उपवन है जिसमें बहुतायत में सेव के पेड़ लगे हुए हैं। मूल रूप से यह लेव के नाना की जागीर थी जो बाद में टॉलस्टॉय की मां को मिली। टॉलस्टॉय का जन्म यहीं हुआ और उन्होंने अपने जीवन का सबसे लम्बा समय यहीं बिताया। उनके सारे तेरह बच्चों का जन्म उसी बिस्तर पर हुआ जिस पर लेव खुद जन्मे थे। टॉलस्टॉय अपनी मृत्यु तक तो यहीं

रहे, बोल्शेविक क्रांति के बाद टॉलस्टॉय परिवार को विशेष छूट के साथ यास्नाया पोल्याना की मिल्कियत मिली, जहां १९२१ से उनका परिवार म्यूज़ियम संचालित करता आ रहा है।

इस जागीर में ३५ से अधिक क़िस्मों के सेवों के पेड़ हैं, दो तालाब और कुछ छोटे मकान हैं जिनका उपयोग कारिंदे किया करते थे। पहले यहां पर ३२ कमरों वाली दो जुड़वां इमारतें हुआ करती थीं जिनमें से अभी तक वह बची है जिसका उपयोग टॉलस्टॉय परिवार रहने के लिए करता था। दूसरी इमारत हूबहू पहले जैसी थी जिसका उपयोग उनके विस्तृत परिवार के अन्य सदस्य करते थे। बाद में लम्बे समय पर उनकी साली यहां आकर रुकी थी, जिस वजह से उसे कुजमिन्स्की इमारत कहा जाने लगा। टॉलस्टॉय इसी इमारत में किसानों और अन्य कारिंदों के बच्चों के लिए स्कूल

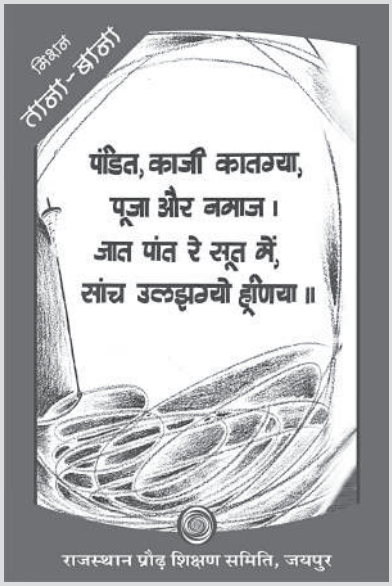

चलाते थे, जिन अनुभवों के बारे में टॉलस्टॉय ने 'स्कूल एट यास्नाया पोल्याना' में लिखा है।

बाद में टॉलस्टॉय वह इमारत जुए में हार गए। जीतने वाले ने उसके हिस्से अलग-अलग करवाकर फिर किसी दूसरी जगह पर पुन: स्थापित की। जो बड़ी इमारत वहां पर बची है उसके अन्दर यह अहसास होता है कि टॉलस्टॉय अपनी जागीर में यहीं-कहीं टहलने गए हों, फिर एक-आध घण्टे में लौटेंगे और अपना कोई उपन्यास लिखने बैठेंगे। लेफ रोज़ सुबह उठकर अपने इस उपवन में घूमने निकलते, पतझड़ में कुछ पत्ते अपने साथ ले आते, हार्वेस्टिंग के ऋतु में किसानों के साथ स्वयं काम करते और फिर किसी महान रचना को पूरा करने बैठ जाते। यास्नाया पोल्याना का ज़िक्र उनके तीनों आत्मकथा आधारित उपन्यास 'childhood', 'boyhood' और 'youth' से लेकर अपने जीवन के बारे में लिखी गई लगभग प्रत्येक रचना में मिलता है।

मास्को लौटने पर पता चला कि टॉलस्टॉय की मृत्यु के बाद उनके शरीर को यास्नाया पोल्याना में वहीं सुपुर्द-ए-ख़ाक किया गया जो स्थान उन्होंने मुक़र्रर किया था, साथ ही उनकी इच्छा के अनुरूप उस पर कोई स्मारक का निर्माण नहीं किया गया। इस जानकारी ने मुझे फिर से एक बार यास्नाया पोल्याना जाने के लिए मजबूर कर दिया। इस बार मैं सीधा वहीं पहुंचा जहां टॉलस्टॉय की समाधि थी।

विडम्बनाओं के दौर में अकेली विडम्बना यह नहीं है कि यास्नाया पोल्याना का पूरी वैश्विक नयी पीढ़ी के लिए नया सन्दर्भ एक डिजिटल वॉर गेम की वॉर साइट के

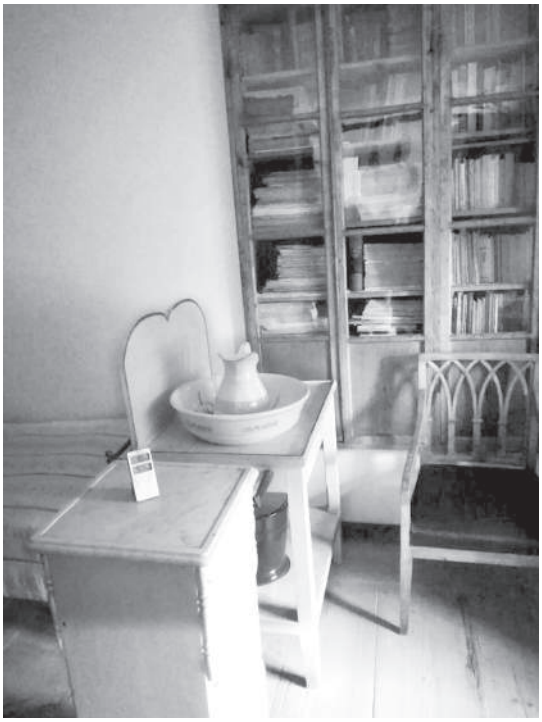

रूप में है। जिस रूस के एक महामानव से भारतीय महामानव गांधी ने अहिंसा, करुणा और शांति की प्रेरणा ली थी आज उन दो राष्ट्रीय राज्यों के बीच का रिश्ता हथियारों की सौदागरी का है। वे लोग हथियार बेचते हैं और हम ख़रीदते हैं। मैं आज भी इस इन्तज़ार में हूं कि फिर कभी रादुगा पब्लिकेशन से हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में 'युद्ध और शांति' जैसे उपन्यास छपेंगे और हम फिर उसी विश्व की कल्पना में विश्वास करेंगे जो रूस के इस यास्नाया पोल्याना और अफ्रीका के टॉलस्टॉय फार्म में किसी जमाने में की गई थी। ❑

छंगाणियों की गली
पोकरण–३४५०२१
मो. : ९८२८९७३१३४

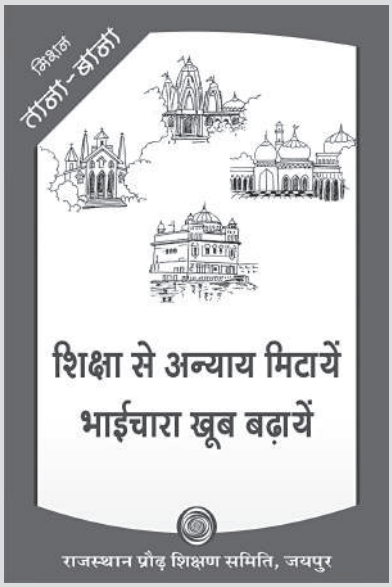

अव्यक्त

लाखों लोगों में से कुछ अच्छे लोगों का चयन हमारी आंतरिक तलब थी। इधर-उधर चलते-फिरते सबसे पूछते थे। अभी हाल ही में अव्यक्त का फोन नंबर मिला। फोन कर लिया। उधर से विनम्र ऊष्मा लिये एक आत्मीय आवाज आयी और अव्यक्त प्रकट भये। नीचे उन्हीं के शब्दों में उनकी अपनी विनम्रता एवं संकोच के साथ लिखा उनका परिचय प्रस्तुत है। सं.

करीब दो दशकों तक प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और वेब तीनों तरह की पत्रकारिता में अर्थपूर्ण योगदान । वैकल्पिक एवं तृणमूल स्तर के लिए पत्र-पत्रिकाओं के लिए सामाजिक विषयों पर लेखन। सक्रिय पत्रकारिता से संन्यास के बाद स्वतंत्र चिंतन और लेखन। लगभग एक वर्ष तक विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य। राष्ट्रीय स्तर की

मिशन ताना-बाना

सामाजिक एकता सत्संग

प्रियवर प्रणाम।

मिशन ताना-बाना का मजमून मिला। आपने लोक समाज की मूल समस्या को पकड़ा है।

घर-घर में बुद्ध, महावीर और संतवाणी को पहुँचाने और उसे दैनिक अनुशीलन का हिस्सा बनाने का आह्वान मेरे हृदय की बात लगी। आज समाज का ताना-बाना छिन्न-भिन्न दिखता है क्योंकि परिवार और समाज ने अपना मूल ही गँवा दिया है। कोई चारित्रिक संतुलन नहीं, कोई मर्यादा नहीं, कोई राष्ट्रीय चेतना नहीं, जागतिक चेतना भी नहीं।

ऐसे में संतों के विचार ही मार्ग दिखा सकते हैं। वहाँ सत्य का प्रकाश है। उस प्रकाश से ही हम अंधों को अपने जीवन और जगत का सत्य देखने की दृष्टि मिलेगी। हम भटके हुओं को राह मिलेगी। शांति का मार्ग मिलेगा।

सामाजिक स्तर पर (गाँव, मोहल्ले, सोसायटी, वार्ड, दफ्तर आदि आधारित) साप्ताहिक गैर-राजनीतिक 'सामाजिक एकता सत्संग' का आयोजन भी इस दिशा में महत्वपूर्ण हो सकता है। सेवा-निवृत्त पेंशनभोगी लोग जो दिनभर लोकनिंदा, क्रिकेट कमेंटरी, विषाक्त राजनीतिक बहसों और ताश के खेल में लगकर अपना समय काटते रहते हैं, जो आर्केस्ट्रा पार्टी और बेटियों-पोतियों को महापतनकारी गानों पर खुलेआम नचवाकर रात-दिन पतित होते रहते, उनके लिए कोई रचनात्मक संवाद कार्यक्रम बनाना होगा।

घर में प्रतिदिन सब कोई एक साथ दरी बिछाकर या ड्राइंग रूम में अपने सुविधानुरूप बैठें और किसी भी सद्-साहित्य का या संत साहित्य का केवल एक पेज का पाठ करें। एक पेज का पाठ करने में लगभग ४ मिनट लगते हैं। इसके बाद पाँच मिनट तक इस पर सामूहिक चर्चा हो। यानी २४ घंटे में केवल ९ मिनट, केवल नौ मिनट। (इस दौरान सबके मोबाइल स्विच्ड ऑफ या साइलेंट रहें और उनसे दूर रखे रहें)।

इतना भर हो जाए। २४ घंटे में पारिवारिक सत्संग के केवल ९ मिनट। तो समझ लिए हमारा पारिवारिक, सामाजिक और जागतिक ताना-बाना फिर से अपनी

मानवीय, नैतिक, चारित्रिक कसावट के साथ और आध्यात्मिक अथवा रूहानी मुक्तता के साथ फिर से दृढ़ होने लगेगा।

ऐसे प्रयासों के अलावा और कोई चारा नहीं दिखता। इस दिशा में आपका प्रयास प्रणम्य है। हम स्वैच्छिक रूप से पतंगे की तरह आग में कूदकर जल रहे हैं और अपनी-अपनी बारी का मूढ़तापूर्वक इंतज़ार कर रहे हैं।

अपनी शांति, अपना चरित्र, अपनी वास्तविक सुरक्षा, सब गँवा रहे हैं। दैहिक और मानसिक हर प्रकार से रोगी हो रहे हैं। भ्रष्ट और स्वार्थी तरीकों संग्रहित कोई धन काम नहीं आ रहा। पागलों की तरह विषाक्त राजनीतिक परस्पर द्वेष और युद्धोन्माद से भर रहे हैं। नकली, बनावटी, दिखावटी और परमुखापेक्षी पराधीन जीवन में तरह-तरह के प्रपंच करके सुख ढूंढ़ रहे हैं।

इस सबसे तभी छूट पाएंगे जब सत्य मात्र की लगन लगेगी। निर्भार और निर्भ्रांत जीवन के असली आनंद को समझना शुरू करेंगे। परिवार संस्था मजबूत होगी। वृद्धजन अपने संन्यस्तभाव से और वैराग्यपूर्ण जीवन से नई पीढ़ियों को ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का मार्ग दिखाएंगे। बुजुर्गों, प्रौढ़ों, युवाओं और बच्चों के बीच जीवन और जगत के सत्य संबंधी हृदयस्पर्शी संवाद शुरू होगा। आपस में एक-दूसरे को सुख-दुःख में संभालने के लिए आत्मीय संबंध बनेंगे। मनुष्य को केवल मनुष्य के रूप में देखने की दृष्टि विकसित होगी।

आप उम्र के इस पड़ाव पर भी इस मोर्चे पर सक्रिय हैं, यह देखकर संतोष होता है। अवश्य ही संसार धर्मवीरों से खाली नहीं है। वे सब आपस में जुड़ें। एक सामाजिक शक्ति पैदा हो। आचार्य-शक्ति शासनमुक्त होकर निर्भयी, निर्वैर और निष्पक्ष हों!

इन्हीं मंगलभावनाओं के साथ यह एक सूची भेज रहा हूँ, जिसमें गांधी-विचार के प्रति अनुरक्त परिजनों के नाम और पते हैं। आप इसका जिस विधि चाहें सदुपयोग करें। शतायु हों, स्वस्थ रहें! सत्य साधना में नित आगे बढ़ें। वैराग्य और पुरुषार्थ बढ़ता ही जावे। ऐसी मंगलकामनाएँ करते हैं।

सर्व शुभ हो, मंगल हो! सबका भला हो! ❑

दासानुदास,
अव्यक्त
ग्राम-कंडबाड़ी,
(कलहोली माता मंदिर के निकट)
पोस्ट-कमलेहड़, तहसील-पालमपुर,
जिला-कांगड़ा -१७६०६१ (हिमाचल प्रदेश)

अस्पतालों के लिए हम लड़े ही कब थे?
मंदिर और मस्जिद के लिए लड़े थे
और देखिए वो दोनों आज बंद हैं। ❑

– बीरेंद्र रंजन

विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं के लिए औपचारिक मार्गदर्शन । तृणमूल स्तर के सामाजिक आंदोलनों एवं स्वयंसेवी संगठनों के लिए स्वैच्छिक मशविरा। लगभग एक दशक से गांधीजी और विनोबा की जीवन-साधना और चिंतन का गहन अध्ययन। तीर्थंकरों, बुद्धों, ऋषियों, संतों और सूफ़ियों की भारतीय और वैश्विक परंपरा का विनम्र अध्ययन एवं तद्विषयक लेखन। भारत के विभिन्न प्रदेशों के बच्चों और युवाओं के साथ गांधीजी और विनोबा के विचारों पर संवाद। पत्र-पत्रिकाओं में गांधी-विचार एवं अहिंसक जीवन विषयक लगभग दो सौ आलेख प्रकाशित।
यांत्रिक होते जा रहे शहरी जीवन में ग्राम्यता, प्राकृतिकता, सहजीविता और विश्वमानुषता की भावना के विकास हेतु प्रयासरत। एक श्रावक की भूमिका में न्यूनतम संग्रह के साथ यायावरी जीवन-साधना। पिछले दो वर्षों से हिमाचल प्रदेश के एक पर्वतीय गाँव में बसेरा। सत्य, अहिंसा, सार्वभौमिक प्रेम, करुणा, अनेकांत, निर्भयता, समन्वय, समानुभूति आदि विचारों के व्यावहारिक प्रयोग पर शोधरत और साधनारत।

द ओपन क्लास रूम

अरविन्द गुप्ता
❑

बालकों की शिक्षा से जुड़े हैं शिक्षाविद् अरविन्द गुप्ता। उनकी चिन्ता है आज जिस तरह के स्कूल खोले जा रहे हैं वे जेल के समान हैं। ब्राजील के पाउलो फ्रेरे और एवरेट रीमर जैसे शिक्षाविद् भी यही मानते रहे हैं कि ऐसे स्कूलों से बालकों को भारी नुकसान हुआ है।
इस आलेख में अरविन्द गुप्ता बता रहे हैं कि पहले भी महान रूसी टॉलस्टॉय से लेकर मारिया मोंटेसरी ने ऐसे स्कूलों की स्थापना की थी जिनका कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं था। इतना ही नहीं, जापानी तोत्तोचान ने और समरहिल जैसे स्कूलों ने तो दुनिया भर में एक मिसाल प्रस्तुत की थी। इनका कहना है कि स्कूलों को भी एक लर्निंग कम्यूनिटी की तरह सोचने की जरूरत है। सं. ❑

यह लेख कोरोना की महामारी के दौर को एक अवसर की तरह स्कूलों को पुन:विचारित कर सामुदायिक शिक्षण स्थल बनाने की बात कहता है, जहां अलग-अलग पृष्ठभूमि के बच्चे एक साथ पढ़ सकें।

पिछली आधी शताब्दी में एक संस्थान के रूप में स्कूलों की आलोचना विकसित हुई है और बढ़ी है। शिक्षाविद् एवरेट रीमर ने १९६० में School is dead पुस्तक लिखी। १९७० में ब्राजील के शिक्षाविद् पाउलो फ्रेरे समूह द्वारा एक पुस्तक Danger school प्रकाशित की गई जिसमें स्कूलों का बच्चों पर नुकसान कार्टून के माध्यम से दर्शाया गया। अधिकतर स्कूल जेलखाने हैं, जहां कुछ विशेषज्ञों द्वारा डिजाइन किया गया एक निश्चित पाठ्यक्रम बच्चों को पढ़ा रहे हैं।

आजकल कई स्कूल कॉरपोरेट उद्यम बन चुके हैं, जहां हजारों बच्चों को भर्ती किया जा रहा है। ये स्कूल एक फैक्टरी की तरह काम कर रहे हैं। उदाहरण के तौर पर लखनऊ का एक प्राइवेट स्कूल अपनी वेबसाइट पर ५६००० बच्चे होने की बात प्रचारित करता है।

प्रगतिशील विचारक प्रारंभ से ही बच्चों के लिए फ्री स्कूल की बात कहते हैं। महान रूसी उपन्यासकार लेव टाल्सटॉय ने अपने घर पर गरीब किसानों के बच्चों के लिए एक स्कूल की स्थापना की जिसमें कोई निश्चित सख्त पाठ्यक्रम नहीं था, गृहकार्य और सजा का कोई प्रावधान नहीं था। मारिया मोंटेसरी पहली इटालियन महिला डॉक्टर बनीं। उन्होंने बच्चों में विकास के स्तरों पर काम किया जो कि आगे जाकर उनके शैक्षिक दर्शन का आधार बना जिसमें बच्चों की आजादी और पसन्द पर जोर दिया गया है। टैगोर द्वारा रटी हुई शिक्षा की आलोचना उनके द्वारा लिखी गई तोता कहानी से स्पष्ट है। जापान में एक छोटे से प्रगतिशील स्कूल के दूरदर्शी प्रधानाचार्य को तोतोचान ने अमर कर दिया है। शायद दुनिया में सबसे लम्बे समय तक चलने वाला उदारवादी समर हिल स्कूल ही है। इसकी स्थापना १९२१ में १०० वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड में ए.एस. नील द्वारा इस विश्वास के

साथ की गई कि स्कूल को बच्चों के अनुसार बनाया जाए ना कि बच्चों को स्कूल के अनुसार।

आमतौर पर सरकारी स्कूल हमेशा गलत कारणों से चर्चा में रहते हैं जैसे कि स्कूल की दीवार गिरना, छत गिरना, बच्चों का मिड डे मील खाकर बीमार पड़ जाना। लेकिन दिल्ली की आप सरकार ने यह संकल्प लिया है कि वह सरकारी स्कूलों को निजी स्कूलों से बेहतर बनाएगी। उन्होंने बुनियादी ढांचे में सुधार कर शिक्षकों को गरिमा प्रदान करने, स्कूल प्रबन्धन समितियों का गठन करके और नवाचार सिखाने के लिए कई अच्छी स्वैच्छिक संस्थाओं को शामिल करके यह सफलता हासिल की है। २०१५ में जहां केवल १७००० क्लास रूम थे, वहीं केवल तीन वर्षों में दिल्ली सरकार ने ८००० नए क्लास रूम बनाए हैं और ११००० क्लास रूम का काम चल रहा है। इस तरह कुल ३६००० क्लास रूमों के लिए दिल्ली सरकार कार्य कर रही है।

भारत में स्कूल हमेशा से ही बहुत विभाजित रहे हैं। १९६६ में कोठारी शिक्षा आयोग की कॉमन स्कूल प्रणाली के सुझाव को कभी लागू नहीं किया गया। आज एक बच्चा कौन-से स्कूल में पढ़ने जाएगा, यह उसकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति पर निर्भर करता है। कोविड महामारी ने इस विभाजन को और बढ़ा दिया है। कोविड-१९ ने माता-पिता को आर्थिक रूप से कमजोर किया है। बहुत से अभिभावक स्कूल की फीस नहीं दे पाये। उन्होंने अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूल से निकाल कर सरकारी स्कूल में प्रवेश दिलवा दिया है। लेकिन सरकार स्वयं को सरकारी स्कूलों से अलग करती जा रही है और इन स्कूलों का प्रबन्धन निजी हाथों में सौंपती जा रही है। सरकार क्यों इस निजीकरण के साथ सुर्खियों में है। क्या सरकार यह नहीं जानती कि अमरीका, इंग्लैंड, जापान और फिनलैंड में सरकारी स्कूल ही श्रेष्ठ हैं। अमीर और गरीब के बीच डिजिटल विभाजन और भी व्यापक हो गया है। गरीबों के पास इन्टरनेट, बढ़िया मोबाइल आदि की सुविधा नहीं है।

ऐसे परिदृश्य में कोई भी अपने आसपास की चीजों से कुछ नया सीख सकता है। महामारी ने लाखों लोगों को घर से काम करने के लिए मजबूर कर दिया है। कई लोगों को यह महसूस हुआ कि उत्पादक कार्य करने के लिए किसी कार्यालय की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रक्रिया में कुछ लोगों ने नियमित कार्यालय और कारखाने की उबाऊ नौकरी का अहसास किया और अपनी प्रतिभा को पहचाना। बहुत से लोग व्यस्त और प्रदूषित शहरों को छोड़कर गांव चले गए हैं।

जब हम स्कूलों को पुन: परिभाषित करें तो हमें कोशिश करनी होगी कि अपने आसपास से सीखने वाली चीजों को भी उसमें शामिल करें। बड़ी हाउसिंग सोसायटी में तो पहले से ही सामुदायिक केन्द्र हैं। छोटी सोसायटी में हमें जगह निश्चित

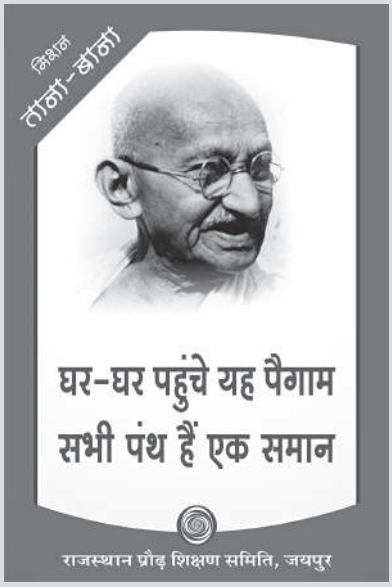

करनी होगी, जहां वयस्क अपने कौशल और क्षमताओं को बच्चों को सिखा सकें।

१९६० के दशक में इंग्लैण्ड में बहुत सारे कम्यूनिटी कॉलेज थे। यहां कोई भी व्यक्ति अपनी क्षमता/कौशल का प्रदर्शन कर सकता था। इसके लिए उसे किसी डिग्री की आवश्यकता नहीं थी और कोई भी व्यक्ति जो सीखना चाहता था, वह यहां आकर सीख सकता था। जैसे हाइकू, चाइनिज आर्ट, पॉटरी, साइकिल सुधारना आदि। हमें स्कूलों को एक कम्यूनिटी लर्निंग की तरह सोचने की जरूरत है। शिक्षकों को लेकर हमारी बहुत संकीर्ण दृष्टि है। कोई भी व्यक्ति बी.एड. की डिग्री के साथ शिक्षक है। हम हजारों सेवानिवृत्त व्यक्तियों को जो कि अनुभवी हैं, उन्हें शिक्षक की तरह क्यों कल्पना नहीं कर सकते?

सरकारी स्कूल इस महामारी के समय में अपने स्कूल को और बेहतर बनाने में उपयोग कर सकता है।

जैसे कि- १. बुनियादी ढांचे में सुधार करके, स्वच्छ शौचालय, पीने का पानी, पुस्तकालय, एक टिंकरिंग लैब और एक खेल का मैदान बनाकर।

२. उम्र के आधार पर बच्चों को अलग करने के बजाय सीखने को आनन्ददायी बनाकर, उनमें मिश्रित आयुवर्ग वाली कक्षाएं हो सकती हैं ताकि बच्चे अपनी गति के अनुरूप सीख पाएं।

३. सरकार अपनी ही प्रणाली के अन्तर्गत ऐसे प्रभावी सन्दर्भ व्यक्तियों का चयन करें जो कि अभिप्रेरक के रूप में कार्य करें। इन्हें किसी प्रकार का कोई मानदेय न दिया जाए बल्कि इनका कार्य- शिक्षकों के समक्ष ऐसे पेश किया जाए कि वे इनसे अभिप्रेरित हो सकें।

४. स्थापित स्वैच्छिक संस्थाओं को उत्तम शिक्षा प्रणाली बनाने के लिए आमंत्रित किया जाए।

महामारी के दौरान हर दिन १.५ मिलियन लोगों ने Archieve.org पर लॉग इन किया है। यह मुफ्त डाउनलोड के लिए २८ मिलियन पुस्तकों का सबसे बड़ा भण्डार है। हमें भारतीय भाषा के लिए इस तरह के मुफ्त संग्रह बनाने की आवश्यकता है। हाल ही में घोषणा की गई कि सरकार वैज्ञानिक पत्रिकाओं के कई संस्करण खरीदेगी ताकि हर कोई उन तक पहुंच सके, यह बहुत सही कदम है।

हमें ऐसी पृष्ठभूमि वाले स्कूलों की आवश्यकता है जहां अलग-अलग वर्ग, जाति, धर्म और क्षमताओं के बच्चे एक साथ पढ़ सकें। एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति और देखभाल की भावना विकसित हो। कर्नाटक के कोलार में डेविड हॉर्सबर्ग के नीलबाग स्कूल में बच्चे अपनी गति से सीख सकते हैं। वे कक्षा ५ की तेलगू, कक्षा ३ की अंग्रेजी और कक्षा ७ की गणित का अध्ययन साथ-साथ करते हैं। उन्होंने विभिन्न क्षमता वाले लोगों के साथ काम करना भी सीखा। उन्होंने सहयोग, समूह कार्य, करुणा, मानवीय ज्ञान और विचारों की बहुलता भी सीखी। ❑

फ्लैट ४०१, चित्रकूट-बी,
१०६५, गोखले क्रास रोड मॉडल कॉलोनी,
सिम्बोसिस सेन्टर फॉर डिस्टेंस लर्निंग,
पुणे-४११०१६
अनुवाद-बटीना मलिक

उनींदे बच्चे और मोबाइल पर क्लास

बच्चे सो रहे हैं। मौसम सर्दी का है। ठिठुरन भी है और गलन भी। कोई बच्चा जागना और उठना नहीं चाहता है, मगर हर घर में हांक लगी है कि उठ-उठ, क्लास का समय हो गया है, कभी क्लास होती है और इस बीच कभी परीक्षा भी हो जाती है। उन्हें तो होना ही है, मगर बच्चों को भी तो सोना ही है। सोने, जागने और कक्षा में बिना मास्टर के पढ़ने के बीच बड़ी कशमकश है। दुखदायी संघर्ष है। अनचाही दखल है।

बालक के जीवन में दखलंदाजी का किसे कितना अधिकार है इसे अभी तक कोई तय नहीं कर सका है। सब कुछ आरोपित है। तर्ज यह है कि 'तुझे जो सिखाया जा रहा है उसे तो तुझे सीखना ही है।' जो सिखाया जा रहा है उसका संसार तो सिर्फ आभासी संसार है। आभास में एहसास नहीं होता है। आनन्द नहीं होता है क्योंकि वह तो सरासर मिथ्या है। हवा में तैरने वाली ध्वनि तरंगों की गति-यति में फर्क आ जाये तो सब कुछ छूमंतर हो जाता है। कह दिया जाता है कि इंटरनेट बंद हो गया है अथवा वाई-फाई का सिग्नल बंद हो गया है। अच्छे भले पढ़े-लिखें लोगों को यह मायाजाल समझ में नहीं आ सकता और तब माता-पिता जो बच्चों पर धौंस जमाते हैं, उनकी भी बोलती बंद हो जाती है। कौन किससे क्या कहे? यह तो आभासी दुनिया है। आभास तो कभी सच नहीं होता। आभास वैसे भी सिर्फ धोखा होता है। फरेब होता है। यह बाजार का कमाल है कि आभास को भी वर्च्यूअल जैसा शब्द देता है। कोई अंग्रेजी का पंडित ही बता सकेगा कि वर्च्यू अगर गुण का नाम है तो वर्च्यूअल आभासी कैसे हो गया? आप भी सोचिये! इस मायाजाल का मतलब समझिये और कल के संसार को समृद्ध करने वाले बालकों को इस मायाजाल से बचा लीजिये। भगवान आपका भला करेगा।

बहुत सच है कि बच्चों को स्कूल नहीं जाना पड़ता, माता-पिताओं को उन्हें नहलाने-धुलाने और टिफिन पैक करने की कोई जहमत नहीं उठानी पड़ती, ड्राइवरों को बसें दौड़ानी नहीं पड़तीं, चपरासियों को घंटी नहीं बजानी पड़ती, सफाई कर्मचारियों को कक्षाओं की सफाई नहीं करनी पड़ती और जाने क्या-क्या सुख पैदा हो जाते हैं। सभी सुखी हैं।

अब जरा अभागे अध्यापकों से भी पूछ लीजिए कि बच्चों की अनुपस्थिति में कैमरे को क्लास पढ़ाना उनको कैसा लगता है? वे न आचार्य हैं, न गुरु हैं। वे केवल एक तंत्र के पुर्जे हैं। वेतन के पायन्दार हैं। यह काफी दुखदायी स्थिति है। गुरु का गुलाम हो जाना एक दुर्घटना है और बच्चों का कक्षा से दूर हो जाना एक दूसरी दुर्घटना है।

अब जरा यह भी सोच लें कि कौन बच्चे इन दूरगामी कक्षाओं में बैठकर पढ़ सकते हैं? कितने बच्चों के माता-पिता मोबाइल खरीद सकते हैं? मोबाइल की बिक्री दिनोंदिन बढ़ रही है, मगर इसका मुनाफा कौन कमा रहा है? भारत देश इस बात का गवाह है कि एक लड़की जो मोबाइल नहीं खरीद सकती थी उसने आत्महत्या ही कर ली। जिन बच्चों ने आत्महत्या नहीं की वे भी तो आत्महंता ही हैं। आरोपित शिक्षा का शिकार हर बच्चा आत्महंता है। मन मार कर पढ़ता है। पढ़ने का स्वांग भी करता है क्योंकि उनींदी आंखों से कितना कुछ देखा जा सकता है, इसे तो कोई मनोवैज्ञानिक ही समझेगा। बच्चे न समझ पाने के कारण अवसादग्रस्त भी हो रहे हैं और हजारों लाखों बच्चे इस अवसाद को धीरे-धीरे घूंट-दर-घूंट पीते रहते हैं। गले उतारते रहते हैं। मां-बाप समझने को भी तैयार नहीं हैं, बस केवल समझाने की जिद पर अड़े हुये हैं। बालकों के कोमल दिलों पर क्या बीत रही है, इसे कोई शिक्षा व्यवस्था सुनने को तैयार नहीं है। ❑

रमेश थानवी
मो. ९४६०३८०२३२

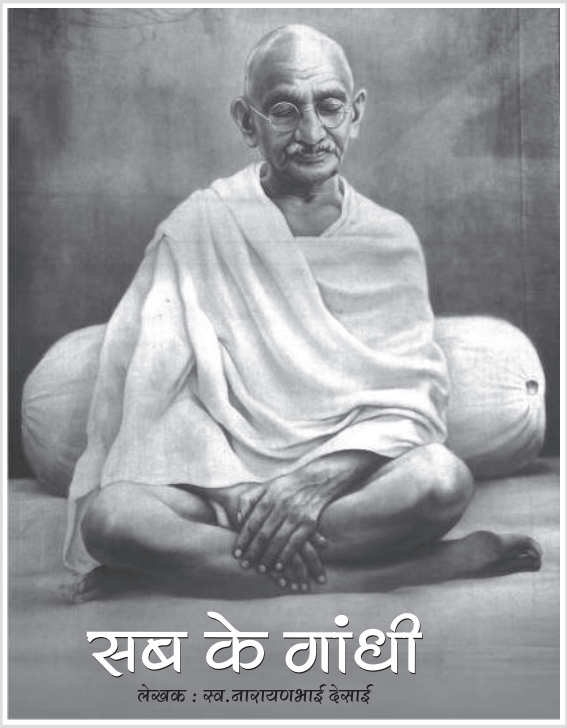

सहयोग राशि के लिए बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH (Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

सब के गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र
जयपुर–302004

१२ पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये ५००/– मात्र

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा ७–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर–३०२००४ से प्रकाशित। संपादक – रमेश थानवी

अनौपचारिका : पृष्ठ–२८ फरवरी, २०२१ रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No. 2581-981X